Devbhoomi Journal of Multidisciplinary Research (DJMR)
URL: www.usvv.ac.in/djmr Email: djmr@usvv.ac.in
Volume-1, Issue-1, Jan – June 2023

1842 के बुन्देला विद्रोह एवं 1857 की क्रान्ति में बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों को बुन्देलों द्वारा प्रदत्त सषक्त चुनौती

प्रो. ब्रजेश कुमार श्रीवास्तव
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष इतिहास विभाग
डॉ. हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

अंग्रेजों ने समस्त भारत में अपना विशाल साम्राज्य कायम किया। अंग्रेजों को सर्वाधिक परेशानी एवं चुनौतियों का सामना बुन्देलखण्ड में करना पड़ा। बुन्देलखण्ड में 1857 की क्रांति के 15 वर्ष पूर्व 1842 के बुन्देला विद्रोह द्वारा अंग्रेजों को प्रथम सशक्त चुनौती बुन्देलों द्वारा दी गई। 1842 एवं 1857 के महासंग्राम के दौरान बुन्देलखण्ड में अंग्रेज विरोधी दो ऐसे खतरनाक त्रिकोण निर्मित हुए जिन्होंने अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिए।

1842 के बुन्देला विद्रोह के प्रमुख सूत्रधार जैतपुर नरेश पारीछत थे। वे विदेशी ब्रिटिश सत्ता के लिए जैतपुर के ज्वालामुखी सिद्ध हुए।[1] 1842 के बुन्देला विद्रोह की पृष्ठभूमि का निर्माण 1836 के बुढ़वामंगल मेले में हुआ। बुढ़वा मंगल काशी का एक विशिष्ट आयोजन था, जो गंगा नदी में नावों को जोड़कर उनपर मंच निर्मित कर आयोजित किया जाता था। इसमें विभिन्न क्षेत्रों के राजे–महाराजे, बड़े–बड़े कलाकार, संगीतज्ञों के अलावा प्रसिद्ध नर्तकियाँ आती थीं। नावों को जोड़कर बनाए गए मंचों पर ये अपनी कला का प्रदर्शन करते थे। मनोरंजन, हास–परिहास, क्रय–विक्रय एवं अपने–अपने वैभव के प्रदर्शन के लिए काशी का बुढ़वामंगल प्रसिद्ध था।[2]

काशीनरेश ईश्वरी नारायण सिंह के आमंत्रण पर जैतपुर नरेश पारीछत, चरखारी नरेश रतनसिंह सहित बुन्देलखण्ड के कुछ प्रमुख राजा 1835 के काशी के बुढ़वा मंगल मेले में भाग लेने गए।[3] काशी में उसी समय भारत के अन्य स्थानों से भी राजे–महाराजे आए हुए थे। इन सभी ने अपने–अपने क्षेत्रों में होने वाले ब्रिटिश अत्याचारों से एक–दूसरे को अवगत कराया। बुन्देलखण्ड के राजाओं ने जहां एक ओर काशी के बुढ़वामंगल मेले का लुत्फ उठाया वहीं दूसरी ओर उन्हें यह जानकारी भी मिली कि उत्तर–दक्षिण, पूर्व–पश्चिम में अंग्रेजों का कैसा–कैसा अत्याचार एवं आतंक फैल रहा है। यहीं पर उन्हें यह भी जानकारी मिली कि इग्लैण्ड के पड़ौसी देश फ्रांस में 1789 की क्रांति सम्पन्न हो चुकी है। वहाँ अत्याचारी राजा लुई 16वे को गद्दी से उतार कर फाँसी दे दी गई है। वहाँ स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व की लहर प्रचलित होकर प्रजातंत्र स्थापित हो गया हे। राजाओं ने यहाँ विचार–विमर्श किया और इस नतीजे पर पहुंचे कि यदि वे भी एक–जुट होकर प्रयत्न करें तो अंग्रेजों को भारत से बाहर खदेड़ा जा सकता है।[4]

काशी का बुढ़वामंगल कई मायनों में बुन्देलखण्ड के राजाओं का प्रेरणास्त्रोत बना। इन्होंने काशी के बुढ़वामंगल की तर्ज पर ही चरखारी रियासत में बुढ़वामंगल मेला आयोजित करने का निर्णय लिया। चरखारी नरेश रतनसिंह की ओर से बुन्देलखण्ड के प्रत्येक राजे–महाराजे, राव–दिमान, जागीरदार एवं उत्साही वीर पुरूषों को इसमें भाग लेने आमंत्रित किया गया।[5]

संवत 1893 अर्थात् 1836 ई. में होली के बाद पहले मंगलवार की बंसती संध्या पर चरखारी के सूपा नामक स्थान पर बुढ़वामंगल आयोजित हुआ।[6] इस बुढ़वामंगल में बुन्देलखण्ड की 42 रियासतों के राजा अथवा उनके प्रतिनिधि सम्मिलत हुए। ये सभी अंग्रेजो के आतंक से त्रस्त थे एवं उनके शिकंजे से छुटकारा पाने आतुर थे। इस बुढ़वा मंगल में – चिरगाँव, चरखारी, जैतपुर, जालौन, झाँसी, खड्डीपुरवा, शाहगढ़, सरीला, जिगनी, ढुरबई, विजना, नरोहा, विजय राघवगढ़, वानपुर, टोड़ी, फतेहपुर, ओरछा, छतरपुर, पन्ना, बिजावर, अलीपुर, झींझन, राहतगढ़, बाँदा, अजयगढ़, कोठी, मैहर, नागोद, सुहावल, सुहागपुर, बहरौली, बंका पहाड़ी, बिरहबेरी, लुगासी, दतिया, समथर एवं कालिंजर आदि के राजा अथवा उनके प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे।(7)

चरखारी के बुढ़वामंगल में एक ओर विभिन्न कलाकार एवं नर्तकियां अपनी कलाओं का प्रदर्शन कर रहे तो दूसरी ओर बुन्देलखण्ड के ये राजे–रजवाड़े अंग्रेजों को भारत से बाहर खदेड़ने की रणनीति बना रहे थें। बुढ़वामंगल में आयोजित राजाओं के सम्मेलन का अध्यक्ष जैतपुर राजा पारीछत को बनाया गया।[8] बुन्देली लोकगीतों से भी हमें इस बुढ़वामंगल की जानकारी मिलती है। कवि द्विज किशोर ने अपनी कृति 'पारीछत को कटक' में लिखा है –

पंती प्रवल पहारे के, सब राजन सिरताज।

जाहिर जम्बुद्वीप में, पारीछात महाराज।।

बुढ़वामंगल कीन श्री रतनेस नरेश ने।

जुड़े सकल परबीन कोल भगौती शीष पे।।

बुढ़वा मंगल में जुड़े राजन सहित नबाव।

रह न जावे देश में कककत्ते कौ साब।।(9)

अर्थात् पहाड़सिंह (1758–1765) के पंती (प्रपौत्र) पारीछत महाराज जम्बूद्वीप (भारत) में सभी राजाओं के सिरताज हैं। चरखारी नरेश रतनसिंह (1820–1857) द्वारा बुढ़वामंगल मेले का आयोजन किया गया। इसमें बुन्देलखण्ड के प्रवीन राजाओं ने भाग लिया। इन राजाओं ने एक–एक कर माँ भगवती (भगौती) के सिर (शीष) पर हाथ रखकर शपथ (कौल) ली कि वे भारत से कलकत्ते कौ साब यानि अंग्रेजों को खदेड़कर ही दम लेंगे। इस प्रकार अखिल भारतीय स्तर पर भारत की स्वाधीनता का प्रथम प्रस्ताव 1836 में आयोजित इस बुढ़वामंगल में

ही पारित हुआ। जैतपुर राजा पारीछत की योग्यता, साहस, निर्भीकता, ओजस्विता, एवं नेतृत्व क्षमता देखकर सभी राजाओं ने अंग्रेज विरोधी मोर्चे का नेतृत्व उसे सौप दिया।[10]

बुढ़वा मंगल में पारित स्वाधीनता के प्रस्ताव को अमलीजामा पहनाने के उद्देश्य से जैतपुर राजा पारीछत ने बुन्देलखण्ड के राजाओं, जागीरदारो आदि को एकजुट करने का कार्य आरंभ किया। अपने विश्वसनीय सेवक सिमरिया के किलेदार बखत कनौजिया के हाथ नाराहट (सागर के पास) के मधुकरशाह एवं हीरापुर (नरसिंहपुर के पास) के राजा हिरदेशाह के पास गुप्त संदेश भेजा कि वे सागर क्षेत्र में अंग्रेजी शासन के विरूद्ध विद्रोह आरंभ करें।[11]

इस तरह समस्त बुन्देलखण्ड में अंग्रेज विरोधी वारूद विछ चुकी थी। एक छोटी सी चिन्गारी विस्फोट कर सकती थी। इस चिन्गारी का कार्य किया नाराहट की घटना ने। होली के त्यौहार के समय 29 मार्च 1842 को नाराहट के जागीरदार रावविजय बहादुर ने एक समारोह आयोजित किया था। इस अवसर झुकनिया नामक नर्तकी नृत्य कर रही थी। पुलिस का एक जमादार उसे उठाकर ले गया। रावविजयबहादुर के पुत्रों मधुकरशाह एवं गणेशजू का खून खौल उठा। उन्होंने कहा कि ऐसे जीवन से तो मृत्यु को गले लगाना अच्छा है।[12] 8 अप्रैल 1842 को विद्रोह की इस चिन्गारी ने ज्वालामुखी का रूप धारण कर लिया।[13] समस्त बुन्देलखण्ड आन्दोलित हो उठा। अंग्रेजो की सेना इस समय प्रथम अफगानिस्तान युद्ध (1839–42) में न केवल फसी हुई थी, अपितु वहाँ उसे मुंह की भी खानी पड़ी थी। अंग्रेजों के साथ करेला और नीम चढ़ा की कहावत चरितार्थ हुई।

शीघ्र ही अप्रैल 1842 में बुन्देलखण्ड में अग्रेज विरोधी प्रथम खतरनाक त्रिकोण निर्मित हो गया। इस त्रिकोण के तीन केन्द्र निम्नानुसार थे –

1. उत्तर–पूर्वी बुन्देलखण्ड में जैतपुर राजा पारीछत एवं उसके साथियों ने ब्रिटिश चौकियों पर कब्जा कर अंग्रेजों की नाक में नकेल डाल दी।
2. मध्य बुन्देलखण्ड में नाराहट के मधुकरशाह, गणेशजू, एवं उनके साथियों ने सागर स्थित अंग्रेजों की नाक में दम कर दिया।
3. दक्षिण–पूर्वी बुन्देलखण्ड में हीरापुर के राजा हिरदेशाह एवं उनके साथियों ने जबलपुर के आस–पास के इलाकों पर कब्जा जमा कर अंग्रेजों की नींद हराम कर दी।

विद्रोह की तीव्रता बढ़ती ही जा रही थी। अन्ततः

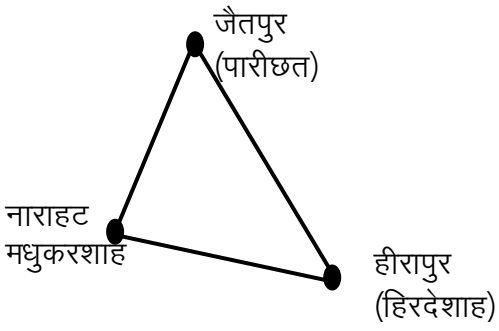

हारकर व सागर–नर्मदा क्षेत्र में लेफ्टिनेट गवर्नर के एजेन्ट चार्ल्स फ्रेजर ने 24 नवम्बर 1842 को बुन्देला विद्रोही पारीछत, हिरदेशाह एवं मधुकरशाह को जिन्दा या मुर्दा पकड़ने पर 2000 रूपये के इनाम की घोषणा की।[14] इस इनाम का जब कोई असर नहीं हुआ तो 19 दिसम्बर 1842 को पारीछत एवं हिरदेशाह की गिरफ्तारी पर इनाम की

राशि बढ़ाकर 10,000/– एवं मधुकरशाह पर 5000/– कर दी गई।[15]

यह इनाम का लालच भी इन विद्रोहियों को पकड़वाने में जब काम न आया तो अंग्रेजों ने लोहा लोहे को काटता है कि कहावत पर ध्यान दिया। चार्ल्स फ्रेजर ने शाहगढ़ राजा बखतवली एवं बुन्देलखण्ड में गवर्नर जनरल के ऐजेन्ट कर्नल डब्ल्यू.एच. स्लीमेन ने वानपुर राजा मर्दनसिंह से बुन्देला विद्रोहियों को पकड़वाने में सहयोग की प्रार्थना की। ये राजा निम्न दो कारणों से अंग्रेजों का सहयोग करने तैयार हो गए।

1. बुन्देला विद्रोही उनकी रियासतों के ग्रामों की निर्दोष जनता को भी लूट रहे थे।
2. बखतवली के पूर्वजों से गढ़ाकोटा एवं मर्दनसिंह के पूर्वजों से चन्देरी इलाका सिंधिया ने छीन लिया थे। ये अंग्रेजों की मदद से अपने इलाके वापस चाहते थे।

अंग्रेजों की उक्त चाल कारगर सिद्ध हुई शाहगढ़ राजा वखतवली ने 22 दिसम्बर 1842 को हिरदेशाह को सपरिवार गिरफ्तार कर चार्ल्स फ्रेजर के हवाले कर दिया।[16] मर्दन सिंह ने 24 जनवरी 1844 को मधुकरशाह को पकड़कर ललितपुर के डिप्टी कमिश्नर हैमिल्टन को सौंप दिया।[17] इससे बुन्देला विद्रोह की तीव्रता में कमी आयी।

उत्तरी बुन्देलखण्ड में पारीछत ने अंग्रेजों को आरंभिक स्तर पर कई युद्धों में परास्त किया। इससे युद्धरत अंग्रेज निस्तेज हो गए। लाहौर जाने वाली अंग्रेज सेना को पारीछत ने उलझा लिया। कवि द्विज किशोर ने लिखा भी है –

नृप पारीछत के लड़े गओ निस्चर को तेज।

जात हतो लाहौर खाँ, अटक रहो अंग्रेज।[18]

पारीछत पर पार पाने अंग्रेजों ने बुन्देलखण्ड के कुछ राजाओं, एवं जैतपुर के दीवान को अपनी ओर मिला लिया। परिणाम स्वरूप जैतपुर अंग्रेजों के कब्जे में आ गया। पारीछत ने हार न मानी वह जंगलों में रह कर गुरिल्ला युद्ध प्रणाली से अंग्रेजों को छकाता रहा। सहयोग देने की शपथ लेने वाले राजा पारीछत को मुहरे पर लगा कर अपनी–अपनी गाड़ियों में छुपकर बैठ गए। पारीछत अकेले ही लड़ते रहे। लोकगीतों में इस बाबत लिखा है –

कर कूच जैतपुर से बगौरा पै मेले

सब राजा दगा दे गए नृप लड़े अकेले।[19]

सबरे राजा जुरे चरखारी बुढ़वामंगल कीन

पुन सब बैठ जाय गढ़ियन में पारीछत को मुहरा दीन।[20]

पारीछत आखिर कब तक अकेले लड़ते अंग्रेजों की मित्र ओरछा की रानी लड़ाई सरकार की सूचना पर अक्टूवर 1844 में जोरन के महल से राजा पारीछत को गिरफ्तार कर लिया गया।[21] इस तरह बुन्देल विद्रोह की अन्तिम चिन्गारी भी बुझ गई। अंग्रेजों ने राहत की

सांस ली। पारीछत की वीरता के किस्सों को गा गा कर हरबोलो ने समस्त बुन्देलखण्ड में अंग्रेज विरोधी चेतना जगाए रखी। उनकी वीरता के किस्से लोक गीतों में अमर है –

राम रची सो होय, लड़ाई तेने खूब लड़ी

जुग–जुग जियो पारीछत, लड़ाई तैने जे करी।[22]

अंग्रेजों ने गढ़ाकोटा एवं चन्देरी इलाके सिंधिया से वापस तो ले लिए मगर बादे अनुसार ये बखतवली एवं मर्दनसिंह को नहीं लौटाए। इससे ये दोनो राजा सहयोगी से असहयोगी की स्थिति में आ गए। 21 नवम्बर 1853 को झाँसी नरेश गंगाधर राव की मृत्यु हो गई। शोक संवेदना व्यक्त करने बखतवली एवं मर्दनसिंह झाँसी गए। वहाँ कानपुर से नाना साहब एवं तात्याटोपे भी आये हुए थे। इन्होंने मिलकर अंग्रेजों को भारत से बाहर खदेड़ने की रणनीति तैयार की। इसी अवसर पर रानी लक्ष्मीबाई ने प्रथम बार स्वराज का नारा दिया। इसका उल्लेख कवि द्वारकेश मिश्र ने अपने इस लोकगीत में किया है –

जिएँ परायें बसी हो, जासे भलोवीर बिस खा मर जाय।

होयॅ सूर सो तेगा तानें, भारत से अंगरेजन भगायॅ।।

अगरेजन को राज न चाने, मिलकें अपनों होय सुराज।

परदेसिन की काट गुलामी, करिये अब रैयत को राज।[23]

अंग्रेजों की गुलामी से मुक्ति का योजनाबद्ध प्रयास 1857 की क्रांति में दृष्टिगोचर हुआ। 15 वर्ष पश्चात् एक बार पुनः बुन्देलखण्ड में अंग्रेज विरोधी द्वितीय खतरनाक त्रिकोण निर्मित हुआ। इस त्रिकोण के तीन केन्द्र निम्नानुसार थे –

(1) 4 जून 1857 को झाँसी में क्रांति आरंभ हुई। 8 जून को झाँसी के झोकनबाग हत्याकाण्ड में 110 अंग्रेज स्त्री–पुरूष मौत के घाट उतार दिए गए।[24] झाँसी में क्रांति का नेतृत्व रानी लक्ष्मीबाई ने किया।

(2) 11 जून को ललितपुर एवं बानपुर में 1857 की क्रांति आरंभ हुई। यहाँ क्रांति का नेतृत्व वानपुर राजा मर्दनसिंह ने संभाला। डर के मारे ललितपुर के अंग्रेज सागर की ओर भाग गए।

(3) सागर में 1 जुलाई को 1857 की क्रांति आरंभ हुई। क्रांति का नेतृत्व शाहगढ़ राजा बखतवली ने संभाला। भयातुर अंग्रेजों ने सागर में छावनी स्थित आवास खाली कर दिये और पूरे 370 अंग्रेजों (173 पुरूषों, 63 महिलाओं एवं 134 बच्चों) ने सागर के किले में शरण ली।[(25)]

Devbhoomi Journal of Multidisciplinary Research (DJMR)
URL: www.usvv.ac.in/djmr Email: djmr@usvv.ac.in
Volume-1, Issue-1, Jan – June 2023

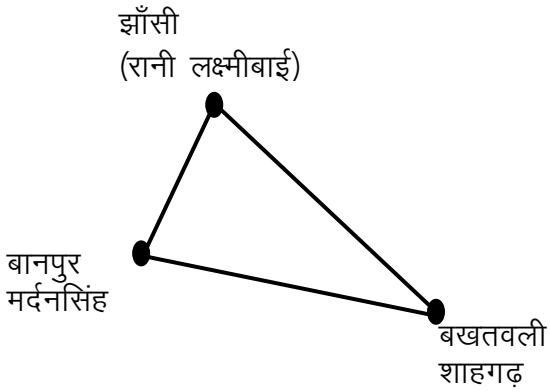

रानी लक्ष्मीबाई, मर्दनसिंह एवं बखतवली ने समस्त बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों की हालत पतली कर दी। सागर के किले को छोड़कर समस्त क्षेत्र पर क्रांतिकारियों का वर्चस्व स्थापित हो गया। बानपुर राजा मर्दन सिंह ने 25 जुलाई 1857 एवं 17 सितम्बर 1857 को क्रमशः दो बार सागर के किले पर आक्रमण किया। सागर का डिप्टी कमिश्नर मेजर डब्ल्यू.सी. वेस्टर्न ने मर्दनसिंह का सामना करके सेना भेजी। मर्दनसिंह ने पीछे हट कर नरयावाली में मोर्चा जमाया। घमासान युद्ध में कर्नल डूगाल मारा गया एवं लेफ्टिनेंट कम्बेल व लेफ्टिनेटं प्रायर गंभीर रूप से घायल हुए।[26] अंग्रेजों पर मर्दन सिंह का आंतक छा गया। इस आतंक की अनुगूँज इस लोकगीत में स्पष्टतः देखी जा सकती है।

का कइये बानपुर बारे की

मर्दनसिंह नृपत जुझारे की

सेना सजन बजन रमतूला, चोटें समर नगारे की

अंगरेजन के गरें उतर गयी पैनी धार दुधारे की

का कइये बानपुर वारे की मर्दनसिंह नृपत जुझारे की।[27]

सागर के किले से अंग्रेजों को मुक्त कराने एवं बुन्देलखण्ड में 1857 की क्रांति के दमन हेतु इन्दौर के पास मऊ में ब्रिगेडियर जनरल ह्यूरोज के नेतृत्व में सेन्ट्रल इण्डिया फोर्स का गठन हुआ। अपनी सागर के किले संबंधी चिन्ता का उल्लेख ह्यूरोज ने अपने पत्र में इन शब्दों में किया है। 'मेरी सबसे बड़ी चिन्ता और व्यग्रता तो यही कि सागर को विद्रोहियों के चंगुल से कैसे मुक्त किया जाय। वह तो पांच माह से विद्रोहियों के चंगुल में है। ..... इस किले में छोटी से बुढ़ढी तक महिलाएँ और बच्चे बन्द है। अभीतक जैसे तैसे किले पर अंग्रेजों का कब्जा बना हुआ है।[28]

ह्यूरोज की सेना मऊ से सीहोर विदिशा होती हुई 28 जनवरी को सागर के प्रवेश द्वार राहतगढ़ पहुंची। मर्दनसिंह एवं बखतवली ने यहाँ मोर्चा संभाला था। इन्होंने जमकर संघर्ष किया मगर परास्त हुए। 3 फरवरी 1858 को ह्यूरोज ने सागर पर अधिकार जमा लिया। यहाँ से वह झाँसी पहुँचा और 3 अप्रैल को झॉसी पर अधिकार कर लिया। रानी लक्ष्मीबाई ने एक पत्र द्वारा मर्दनसिंह एवं बखतवली को ग्वालियर आने हेतु कहा।[29] ग्वालियर पहुंचते उससे पूर्व ही उन्हें पता चल गया कि 18 जून 1858 को रानी लक्ष्मीबाई अंग्रेजों से संघर्ष करते हुए वीरगति को प्राप्त हो गई।

रानी लक्ष्मीबाई की मृत्यु का समाचार इनके लिए एक आघात के समान था। ये दोनो राजा भी थक चुके थे। अतः 5 जुलाई 1858 को मर्दन सिंह ने शाहगढ़ के अस्टिसेट सुपरिन्टेंडेट जे. थॉर्नटन के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। दूसरे ही दिन 6 जुलाई 1858 को बखतवली ने भी थार्नटन के समक्ष आत्म समर्पण कर दिया।[30]

इस प्रकार बुन्देलखण्ड में 1857 की क्रांति का दमन कर दिया गया। राजा पारीछत की भांति तात्याटोपे ने अवश्य कुछ समय तक अंग्रेजों को गुरिल्ला युद्ध प्रणाली द्वारा छकाया मगर अन्ततः वह भी पकड़ा गया और 18 अप्रैल 1859 को उसे शिवपुरी में फांसी दे दी गई।[31]

क्रांति समाप्त भले ही हो गई परंतु 1842 के बुन्देला विद्रोह के दौरान पारीछत, मधुकरशाह एवं हिरदेशाह के खतरनाक त्रिकोण ने अंग्रेजों को सशक्त चुनौती प्रस्तुत की। इसी सशक्त चुनौती की पुनरावृत्ति 1857 की क्रांति के दौरान रानी लक्ष्मीबाई, मर्दनसिंह एवं बखतवली द्वारा निर्मित खतरनाक त्रिकोण द्वारा की गई। इनके आतंक से अंग्रेज आतंकित रहे। अपने सीमित संशाधनों के बावजूद इन क्रांतिकारियों ने अंग्रेजों से डट कर लोहा लिया। इनके बलिदान व्यर्थ नहीं गए आज भी बुन्देलखण्ड में इन क्रांतिवीरों के नाम अमर हैं। इनका कृतित्व बुन्देली लोकगीतों की प्रमुख विषयवस्तु बना। इनके बहादुरी के किस्सों को लोकगीतों में पिरोकर हरबोलों ने घर–घर, द्वार–द्वार पहुंचा कर बुन्देलखण्ड में राष्ट्रीय चेतना जागृत की।

संदर्भ

1. बी. के. श्रीवास्तव, बुन्देलखण्ड का इतिहास (1531 से 1857 ई. तक), डी.के.प्रिंट वर्ल्ड (प्रा.) लि. नई दिल्ली, 2019, पृ. 80–81
2. रामसेवक रिछारिया, सन् 1841 के बुन्देला विद्रोह के जनक : जैतपुर नरेश पारीछत, ऊषा प्रकाशन, बरूआ सागर, झाँसी, 1993, पृ. 35
3. वही, पृ. 35–36
4. वही, पृ. 36
5. वही, पृ. 37
6. नर्मदाप्रसाद गुप्त, बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति का इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1995, पृ. 444
7. रामसेवक रिछारिया, पूर्वोक्त, पृ. 39
8. वही, पृ. 40
9. द्विज किशोर, हस्तलिखित, पारीछत कौ कटक, 1–2,3
10. रामसेवक रिछारिया, पूर्वोक्त, पृ. 45–46
11. सुरेश मिश्र, 1842 के विद्रोही : हीरापुर के हिरदेशाह, स्वराज संस्थान, भोपाल, 2007, पृ.9
12. जयप्रकाश मिश्र, बुन्देला विद्रोह, स्वराज संस्थान, भोपाल, 2008, पृ. 51

13. वही, पृ. 69
14. जबलपुर डिवीजन बन्डल करसपान्डेन्स, केस फाइल, क्र.50, 1842, पृ. 491
15. वही, केसफाइल, क्र. 152, पृ. 1, दिनांक 19.12.1842
16. ब्रजेश कुमार श्रीवास्तव, '1842 के बुन्देला विद्रोह का नायक मधुकरशाह', ईसुरी, अंक 18, वर्ष 2010–11, बुन्देली पीठ, सागर, पृ 188
17. वही, पृ. 188–89
18. पारीछत कौ कटक, पूर्वोक्त, 2–15
19. वही, 2–7
20. नर्मदा प्रसाद गुप्त, आजादी के गायक हरबोले, स्वराज संस्थान, भोपाल, पृ. 34
21. राम सेवक रिछारिया, पूर्वोक्त, पृ. 62
22. बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति का इतिहास, पूर्वोक्त, पृ. 455
23. आजादी के गायक हरबोले, पूर्वोक्त, पृ. 58
24. बी.के. श्रीवास्तव, भारतीय इतिहास की विषय वस्तु, एस.बी.पी.डी., पब्लिकेशन, आगरा, 2010, पृ. 199
25. वहीं, पृ. 200
26. राष्ट्रीय अभिलेखागार, कन्सल्टेशन 183–85, दिनांक 29.01.1858, गवर्नर जनरल के एजेन्ट की ओर से ब्रिटिश सरकार के नाम पत्र संस्था, 136 दिनांक 20.09.1857
27. आजादी के गायक हरबोले, पूर्वोक्त, पृ. 69
28. भारतीय इतिहास की विषयवस्तु, पूर्वोवत, पृ. 202
29. वसुदेव गोस्वामी, विद्रोही वानपुर, गोस्वामी पुस्तक सदन, दतिया, 1993, पृ. 79
30. ब्रजेश कुमार श्रीवास्तव, 1857 के विद्रोह में राजा बखतवली की दूरदर्शिता, दोस्ती एवं व्यूह रचना, जे.पी. मिश्रा, राजीव दुबे (सम्पादित), मध्यभारत में 1857 ई. का विद्रोह, रिसर्च इंडिया प्रेस, नई दिल्ली, 2008, पृ. 111
31. भारतीय इतिहास की विषयवस्तु, पूर्वोक्त, पृ. 203